

गढ़वाल का लोक संगीत एवं संस्कृति

डॉ० रेखा साह

संस्कृति का आधार सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताएँ व परम्पराएँ होती है एवं इन्हीं के आधार पर समयानुसार विकास यात्रा के साथ संस्कृति का विकास होता रहता है। लोक संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः ग्रामीण अंचलों में पाई जाने वाली संस्कृति से है। लोक शब्द को सामान्यतः ग्रामीण अंचल से ही सम्बन्धित माना जाता है ग्रामीण अंचलों में धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताएँ स्वस्थ एवं सशक्त परम्पराओं के साथ विद्यमान रहती हैं जो कि उस क्षेत्र विशेष की लोक संस्कृति कहलाती है। लोक संस्कृति पर नगरीय विकास का प्रभाव नगण्य रूप में ही पड़ता है अतः लोक संस्कृति अपनी पारम्परिक स्वरूप में ही विद्यमान रहती है। ग्रामीण अंचल के लोग अपनी लोक संस्कृति को पारम्परिक स्वरूप में ही संजोए रखने में गर्व का अनुभव करते हैं। लोक संस्कृति एक पारम्परिक धरोहर है।

गढ़वाल की लोक संस्कृति भी यहाँ की सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं पर आधारित है। गढ़वाल क्षेत्र में होने वाले धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक मेले तथा उत्सव, भाषा, परिधान, व्यंजन, लोक कलाएँ, शिल्प कलाएँ तथा लोक संगीत सभी गढ़वाल की लोक संस्कृति के अंग हैं। यहाँ की लोक संस्कृति पर ही यहाँ के लोगों के जीवन यापन हेतु कर्म और जीवन शैली आधारित है। गढ़वाल क्षेत्र में होने वाले प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक आयोजन हिन्दू धर्म के समस्त संस्कार तथा बीमारी के उपचार हेतु भी सभी में लोक संगीत की मुख्य भूमिका है गढ़वाल का लोक संगीत यहाँ की संस्कृति का प्रतिबिम्ब है। मनोरंजन के लिए प्रयोग होने वाले गढ़वाल के लोक संगीत में भी यहाँ की संस्कृति की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। गढ़वाल के लोक संगीत का यहाँ की लोक संस्कृति से धनिष्ठ सम्बन्ध है, प्रस्तुत शोध पत्र इसी अध्ययन पर आधारित है।

गढ़वाल तथा कुमाऊँ मण्डल को मिलाकर पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड की स्थापना हुई। गढ़वाल क्षेत्र में गढ़वाली एवं कुमाऊँ में कुमाऊँनी बोली प्रयोग की जाती है। दोनों क्षेत्रों की कुछ पृथक संस्कृति है जिस पर विचार करना प्रस्तुत पत्र का उद्देश्य नहीं है, केवल गढ़वाल क्षेत्र के लोक संगीत में निहित संस्कृति का अध्ययन ही इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया जाएगा।

गढ़वाल मण्डल में छः जनपद देहरादून, हरिद्वार, टिहरी, पौड़ी, चमोली तथा उत्तरकाशी है। टिहरी, पौड़ी, चमोली एवं उत्तरकाशी जनपद में पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्र अधिक हैं जबकि हरिद्वार तथा देहरादून में मैदानी क्षेत्र अधिक हैं। अतः पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों में ही गढ़वाल की लोक संस्कृति पूर्ण रूप से रची बसी है। देहरादून एवं हरिद्वार जनपद में गढ़वाल की लोक संस्कृति के दर्शन कम ही होते हैं मात्र सरकारी लोक संगीत तथा लोक व्यंजन के आयोजन में ही गढ़वाल की संस्कृति दिखाई देती है। देहरादून उत्तराखण्ड की राजधानी होने के कारण इसमें इस प्रकार के सरकारी आयोजन प्रायः होते रहते हैं। गढ़वाल के पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की जीवन शैली गढ़वाली संस्कृति पर ही आधारित है। गढ़वाल का लोक संगीत भी यहाँ के जीवन में पूर्ण रूप से व्याप्त है। कोई भी मांगलिक कार्य, क्षेत्र में विशिष्ट अतिथि का आगमन, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मेले व जलूस तथा हिन्दू धर्म के समस्त संस्कार बिना ढोल की थाप के आरम्भ एवं सम्पन्न नहीं होते हैं। गढ़वाल के लोक संगीत का प्रयोग परिवार पर आई विपत्ति को दूर करने के लिए भी किया जाता है जसमें विशेष वर्ग के लोक कलाकारों को परिवार द्वारा आमंत्रित किया जाता है। मनोरंजन हेतु भी नृत्य आयोजित किये जाते हैं जिसमें लोक संगीत कलाकारों की भूमिका मुख्य रहती है।

गढ़वाल के लोक संगीत में मुख्य भूमिक यहाँ के लोक अवनद्य वाद्य ढोल, डौर, हुड़का तथा ढोलक की है। ढोल के साथ दमाऊ की संगत अनिवार्य रूप से रहती है तथा ढोल-दमाऊ एक जोड़ी के रूप में वादन में प्रयोग किया जाता है तथा डौर-थाली एवं हुड़का-थाली गढ़वाल के संगीत में जोड़ी के रूप में ही उपस्थित रहते हैं। हुड़के का प्रयोग मेलों

*संगीत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, डी0एस0बी0 परिसर, नैनीताल।

में तथा लोक गीतों के साथ संगत में स्वतंत्र रूप में भी पाया जाता है जबकि ढोल—दमाऊ और डौर—थाली युगल रूप में ही प्रयोग होती है। गढ़वाल के लोक संगीत में अलगोजा, भांकुरा एवं रणसिंगा का प्रयोग भी पाया जाता है अलगोजा दो छोटी बाँसुरी को जोड़कर बनाया जाता है। भांकुरा एवं रणसिंगा ताँबे अथवा पीतल के बड़े आकार का मुँह में फूँक से बजने वाला वाद्य है जिसमें केवल अधिकतम तीन स्वर ही निकाले जा सकते हैं इसका प्रयोग ढोल—दमाऊ वादन के साथ बीच—बीच में एकरसता को भंग करने के लिए प्रयोग किया जाता है। अलगोजा का प्रयोग पारम्परिक लोक अवनद्य वाद्यों के वादन के साथ नहीं होता है एवं इसका अस्तित्व मुख्य रूप से स्वतंत्र ही है। इसके अतिरिक्त गढ़वाल के लोक संगीत में एक अन्य स्वर वाद्य मसकबीन का प्रयोग भी पाया जाता है। मसकबीन यद्यपि मूलतः स्काटलैंड का बैगपाइप है जो कि अंग्रेजों के आगमन के कारण भारत में आया। इस वाद्य को उत्तराखण्ड के लोक संगीत में ग्रहण कर लिया गया। अलगोजा, भांकुरा, रणसिंगा, मसकबीन भारतीय वाद्यों के वर्गीकरण के अनुसार सुषिर वाद्य की श्रेणी में आते हैं।

गढ़वाल में लोक संगीत निम्न तीन रूपों में पाया जाता है जो कि धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है।

1. धार्मिक एवं सामाजिक,
2. औझाई कार्य,
3. मनोरंजन हेतु।

उपरोक्त तीन रूपों में लोक संगीत का निश्चित स्वरूप उपस्थित रहता है तथा इसमें प्रयोग होने वाले वाद्य एवं वादक कलाकार निश्चित तथा पृथक होते हैं।

धार्मिक एवं सामाजिक

किसी भी धार्मिक मांगलिक कार्य का शुभारम्भ ढोल—दमाऊ के वादन के साथ होता है। प्रत्येक ढोल वादक के निश्चित जजमान होते हैं तथा प्रारम्भ में जजमान द्वारा ढोल तथा ढोल वादक का पूजन किया जाता है। ढोल—दमाऊ वादक 'औजी' जाति के होते हैं जो कि सरकार के नियमानुसार शिल्पकार होते हैं तथा अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आते हैं ये लोक कलाकार अपने नाम के बाद 'दास' शब्द का प्रयोग जाति सूचक के रूप में करते हैं। ढोल वादकों को ढोली भी कहा जाता है ये कलाकार ढोल—दमाऊ वादन के अतिरिक्त खेती, मवेशियों का पालन तथा सिलाई का कार्य अपने जीवन यापन के लिए करते हैं। ढोल गढ़वाल का मुख्य अवनद्य वाद्य है जिसके दो मुँह पर बकरी की खाल मढ़ी होती है जिसे पूड़ी कहते हैं जो पीतल, ताँबे का बना होता है। पारम्परिक मान्यता के आधार पर ढोल को पूरे ब्रह्मांड का प्रतीक माना गया है तथा इसके प्रत्येक भाग को पौराणिक देवी—देवताओं से प्रतीक रूप में सम्बन्धित किया गया है। ढोल बाएँ हाथ की उँगली एवं हथेली तथा दाहिने हाथ से लकड़ी के द्वारा बजाया जाता है। हाथ से बजने वाली पूड़ी ऊँचे स्वर की तथा लकड़ी से बजने वाला मुँह नीचे स्वर का होता है जैसे पखावज एवं तबले में ऊँचे तथा नीचे स्वर के दो भाग होते हैं। तबला तथा पखावज में ऊँचे स्वर वाली पूड़ी को दायें एवं नीचे स्वर वाली पूड़ी को बायें कहा जाता है जो कि ढोल के विपरीत है। ढोल की दायें भाग वाली पूड़ी को सूर्य देव तथा बायें वाली पूड़ी को चन्द्र देव के प्रतीक स्वरूप मानते हैं। जिस पट्टी से ढोल को कन्धे पर लटकाया जाता है उसे ब्रह्मा का जनेऊ माना जाता है। पट्टी को जिन लोहे के दो कुण्डलों से बाँधा जाता है इन कुण्डलों को महादेव के दो कान के कुण्डल माना गया है, ढोल की दो पूड़ियों को जिन डोरी से बाँधा जाता है उसको नागदेवता का रूप तथा इन पूड़ियों को कस्सण से कसकर पूड़ी के स्वर को ऊँचा नीचा किया जाता है उसको नागदेवता का बाल माना जाता है। ढोल की पूड़ी के बारह छिद्रों को भी पौराणिक देवी—देवताओं एवं आंचलिक देवी—देवताओं के प्रतीक स्वरूप माना गया है। ढोल को ब्रह्माण्ड के स्वरूप के साथ—साथ पवन देव भी माना जाता है। ढोल वादकों के अनुसार ढोल की राशि सिंह है। ढोल की ढोल वादकों द्वारा बसन्त पंचमी के दिन सरस्वती पूजन किया जाता है इस प्रकार ढोल

वाद्य गढ़वाल लोक समाज का एक मंगल वाद्य है जिसका प्रत्येक मांगलिक कार्य में वादन अनिवार्य रूप से किया जाता है।

दमाऊ, एक मुँह वाला वाद्य है जिसका स्वर ऊँचा होता है तथा इसको गले में इस प्रकार लटकाया जाता है जिससे इसका मुँह श्रोताओं की ओर रहता है। दमाऊ पर दोनों हाथ से लकड़ी के प्रहार द्वारा ध्वनि निकाली जाती है इस पर निकलने वाले शब्द अथवा बोल एक समान होते हैं जो कि ढोल वादन में ढोल के बोलों की रिक्तता को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार ढोल-दमाऊ की जोड़ी पूर्ण रूप में रसता लोन में सक्षम होती है। बोल में विभिन्न प्रकार की लय संरचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं जिसमें संगत के रूप में दमाऊ का प्रयोग रहता है। ढोल-दमाऊ की जोड़ी लयात्मकता को पूर्णता प्रदान करती है।

ढोल-दमाऊ का प्रयोग प्रत्येक मांगलिक एवं सामाजिक आयोजन में किया जाता है जो उदाहरण स्वरूप निम्न है।

1. नामकरण संस्कार, विवाह (विवाह रीति के प्रत्येक संस्कार)
2. धार्मिक तथा पौराणिक पूजा (जो कि मुख्य रूप से महाभारत के पात्र, गढ़वाल इतिहास के राजा, आंचलिक देवी-देवता तथा पाण्डव नृत्य)
3. संक्रान्त के दिन (हिन्दू माह का प्रथम दिन)
4. घर में आगमन तथा गृहप्रवेश
5. सामाजिक पूजा तथा किसी मन्दिर की स्थापना
6. विशिष्ट अतिथि का आगमन
7. सामाजिक एवं धार्मिक मेले

ढोल के मंगल वाद्य होने के कारण इसका प्रयोग किसी परिवार में मृत्यु होने पर इसका वादन शोक समय तक नहीं किया जाता है। एक वर्ष का शोक समय समाप्त होने पर ढोल-दमाऊ का वादन किया जाता है जो कि इस बात की सूचना होती है कि शोक का समय समाप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त यदि परिवार में कोई आवश्यक पूजा होनी होती है तो उसमें मात्र दमाऊ ही बजाया जाता है। मृत्यु की सूचना भी ढोल पर विशेष प्रकार के वादन से आस-पास के गाँव में दी जाती है। वर की बारात में ढोल-दमाऊ बारात के साथ चलते हैं तथा रणसिंगा, एवं मसकबीन इस बारात के बाजों में सम्मिलित रहते हैं। वर तथा वधू के पक्ष के ढोल वादकों की वादन प्रतियोगिता भी वधू के घर बारात पहुँचने पर होती है जो विवाह कार्यक्रम में विशेष आकर्षण पैदा करती है।

ओझाई कार्य

गढ़वाल समाज में ऐसी मान्यता है कि देवी-देवता तथा प्रेतात्माओं के रूष्ट होने पर परिवार में विपत्ति अथवा परिवार के किसी सदस्य को रोग ग्रसित करना है ऐसी स्थिति में डौर-थाली एवं हुड़का-थाली के लोक कलाकारों की सहायता ली जाती है। डौर-थाली या हुड़का-थाली के वादन से रूष्ट देवी-देवता अथवा प्रेतात्मा का आवाहन कर उसे बुलाया जाता है जो कि पीड़ित परिवार में किसी व्यक्ति पर अवतरित होता है उसको नचाया जाता है और फिर उसको प्रसन्न कर विदा कर दिया जाता है ग्रामीण मैदानी क्षेत्रों में भी इस प्रकार की मान्यता व्याप्त है जिसको ओझा द्वारा झाड़-फूँक कर किया जाता है। इस प्रकार के लोक संगीत के प्रयोग से पीड़ित व्यक्ति ठीक भी हो जाता है तथा परिवार पर आई विपत्ति भी समाप्त होने लगती है इसमें डौर वादक अपनी भाषा में वादन के साथ देवी-देवता अथवा प्रेतात्मा से सम्बन्धित गीत प्रस्तुत करता है। डौर-थाली अथवा हुड़का थाली के वादन से एक विशेष प्रकार का वातावरण पैदा होता है जिसका रूप सौद्र होता है इस

रौद्र संगीत को स्थापित करने में थाली के ध्वनि की विशेष भूमिका रहती है। डौर वाद्य डमरू की भाँति होता है जिसका आकार डमरू से बड़ा रहता है इसको भी ढोल की भाँति दायें हाथ में लकड़ी तथा बायें हाथ से बजाया जाता है। ढोल पर बजने वाली लयात्मक रचनाएँ ही डौर वादन में प्रयोग की जाती हैं। इसके वादक शिल्पकार वर्ण के होते हैं और किसी मांगलिक कार्य तथा मनोरंजन हेतु इसका प्रयोग नहीं होता। डौर-थाली के कलाकार इस पारम्परिक लोक संगीत के अतिरिक्त धातु के बर्तन बनाने का कार्य भी करते हैं जो कि 'टम्टा' जाति के होते हैं। डौर-थाली के वादक हुड़का-थाली भी बजाते हैं हुड़का वादक यद्यपि अपृथक रूप में भी पाये जाते हैं। थाली को जमीन में रखकर हाथ से दमाऊ की भाँति बजाया जाता है थाली को लोक भाषा में 'थकुली' कहा जाता है जो कि काँसा धातु की बनी होती है। औझाई कार्य के अतिरिक्त हुड़का-थाली का प्रयोग पावड़ा गायन जिसमें गढ़वाल की ऐतिहासिक वीरगाथा तथा राजाओं की गाथा गायन में भी किया जाता है परन्तु डौर-थाली का प्रयोग औझाई कार्य तक ही सीमित है जो कि यहाँ के रोग हेतु लोक उपचार भी है जिसका आधार यहाँ की धार्मिक एवं सामाजिक मान्यता है।

मनोरंजन हेतु संगीत

संगीत का मनोरंजन के साथ विशेष सम्बन्ध है। उत्साह व हर्षोल्लास के समय मनुष्य के पाँव स्वयं ही थिरकने लगते हैं। गढ़वाल में लोक मेले, उत्सव तथा विवाह आदि में ढोल-दमाऊ की लय पर नृत्य के द्वारा अपने हर्ष एवं उल्लास को व्यक्त करते हैं। हुड़का-थाली पर पावड़ा गायन भी मनोरंजन हेतु किया जाता है जो कि बिना थाली के प्रयोग का रहता है। हुड़का बैठकर तथा खड़े होकर दोनों प्रकार से बजाते हैं जिसको बायें कन्धे पर लटकाकर बजाया जाता है। यह एक मात्र ऐसा वाद्य है जिसको एक ही मुँह पर एक हाथ से बजाया जाता है तथा इसका स्वर ऊँचा रहता है नीचे स्वर की पूर्ति हुड़के की डोरी को ढीला छोड़कर उत्पन्न गूँज द्वारा की जाती है।

गढ़वाल क्षेत्र में संगीत द्वारा मनोरंजन प्रस्तुत करने वालों का एक विशेष वर्ग है जो कि ढोल, डौर, थाली तथा हुड़का के कलाकारों से पृथक है यह पति-पत्नी की जोड़ी रहती है जो कि 'बद्दी' जाति के माने जाते हैं। इसमें संगीत के लिए ढोलक वाद्य का प्रयोग किया जाता है। गढ़वाल की ढोलक सामान्यतः पाई जाने वाली ढोलक की भाँति ही है। ढोलक का वादन पुरुष वर्ग द्वारा किया जाता है तथा इसकी लय पर स्त्री पाव में घुँघरू बाँध कर नृत्य करती है। इस जोड़ी में स्त्री मुख्य कलाकार की भूमिका में रहती है तथा इसी के द्वारा गायन प्रारम्भ किया जाता है जिसको बाद में पुरुष द्वारा गाया जाता है तथा स्त्री इस बीच नृत्य प्रस्तुत करती है। नृत्य का एक भाग समाप्त होने पर स्त्री द्वारा गायन तथा नृत्य पहले की भाँति ही प्रस्तुत किया जाता है इन कलाकारों द्वारा सभी प्रकार के लोक गीत प्रस्तुत किये जाते हैं, तथा उपस्थित श्रोताओं को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी प्रचलित गजलें तथा फिल्मी गीत भी प्रस्तुत करने में परहेज नहीं करते। इस नृत्य गीत की प्रस्तुति श्रोताओं के बैठक में की जाती है तथा बीच-बीच में नर्तकी को धन की भेंट भी दी जाती है। मेलों में भी ये कलाकार अपने संगीत द्वारा लोगों का मनोरंजन करते हैं। इस जोड़ी को 'बद्दी-बदनी' अथवा 'बेड़ा-बेड़ी' के नाम से जाना जाता है इसमें पुरुष कलाकार हाथ में कड़ा तथा सिर पर सिकखों की तरह बाल रखते हैं। यह रहस्य एक ऐतिहासिक-सामाजिक अध्ययन का विषय है।

पारम्परिक लोक कलाकारों के अतिरिक्त वर्तमान में नये लोक गायक समाज में विद्यमान हैं जिन पर शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत (भजन, गजल) तथा फिल्मी संगीत का प्रभाव भी देखा जाता है ये लोक गायक अपनी प्रस्तुति में हारमोनियम, सिन्थसाइजर, गिटार तथा तबला आदि का प्रयोग भी करते हैं आकाशवाणी में भी लोक गीतों के साथ कभी-कभी तबला वाद्य की संगत भी सुनने को मिलती है इस प्रकार के संगीत का उद्देश्य मात्र मनोरंजन रहता है तथा इनके कार्यक्रम अधिकतर मंचों पर प्रस्तुत किये जाते हैं जबकि गढ़वाल क्षेत्र के पारम्परिक लोक संगीत का प्रयोग केवल सांस्कृतिक परिवेश में ही होता है।

गढ़वाल के लोक संगीत में यहाँ की लोक संस्कृति पूर्ण रूप से व्याप्त है। समस्त सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं का निर्वहन लोक संगीत द्वारा ही किया जाता है। अतः गढ़वाल के लोक संगीत का अध्ययन यहाँ की संस्कृति का अध्ययन

भी है। यहाँ की वर्ण व्यवस्था के दर्शन भी गढ़वाल के लोक संगीत में होते हैं तथा समस्त रीति-रिवाज भी लोक संगीत के माध्यम से जाने जा सकते हैं प्रस्तुत पत्र में लोक संस्कृति के अन्य अंग व्यंजन एवं परिधान का अध्ययन सम्मिलित नहीं किया गया है चूँकि इस पत्र का उद्देश्य लोक संगीत के माध्यम से लोक संस्कृति का अध्ययन ही था।

संदर्भ

1. कृष्णा, विजय — Rhythmic Analysis of Garhwal Folk Music.
2. नौटियाल, शिवानन्द, प्रभात शास्त्री — गढ़वाल में लोक नृत्य, व गीत।
3. चातक गोविन्द — गढ़वाल भाषा, साहित्य और संस्कृति।
4. चन्दोला अनूप — Folk Drumming in the Himalayas.